रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक चिंतन की आधुनिकता

*अनूप कुमार**

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने समय की शिक्षा से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर गहन चिंतन किया और उनके समाधान के लिए जो सुझाव दिये, वे वर्तमान की कई शैक्षिक उलझनों को सुलझाने में भी कारगर प्रतीत होते हैं। इस तरह उनका शैक्षिक विमर्श आधुनिक कहा जा सकता है। प्रस्तुत लेख में गुरुदेव के ऐसे ही कुछ विचारों की प्रासंगिकता को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर एक विशिष्ट कवि के रूप में विश्वविख्यात हैं। विवेच्य कवि का अपनी दृष्टि की व्यापकता और चिंतन की समग्रता में महाकवि के रूप में अवतरित होना स्वाभाविक प्रतीत होता है। उनका चिंतन उनकी रचनाओं में तो दिखाई देता ही है, वह बड़े ही व्यवस्थित ढंग से उनके लेखों/निबंधों में अनुस्यूत हुआ है। जीवन से संबद्ध विभिन्न पहलुओं पर गुरुदेव ने सूक्ष्मता से विचार किया है। इस क्रम में शिक्षा से जुड़े मुद्दों पर भी उनकी पैनी दृष्टि पड़ी है जो सालों बाद भी आधुनिक लगती है। विद्यालयों की स्थिति को लेकर रवीन्द्रनाथ की चिंता द्रष्टव्य है–

> *"इस देश में हम जिसे स्कूल कहते हैं वह शिक्षा देने का एक कारखाना है। अध्यापक इस कारखाने का अंग है। साढ़े दस बजे घंटी बजती है और कारखाना खुलता है। कल चलती रहती है और साथ ही अध्यापक का मुँह चलता रहता है। चार बजे कारखाना बंद हो जाता है और साथ ही अध्यापक रूपी कल भी अपना मुँह बंद कर देती है। छात्रगण कल से प्राप्त विद्या के दो-चार पन्ने रटकर घर लौट जाते हैं। उसके बाद परीक्षा के समय इस विद्या की जाँच होती है और उस पर चिह्न लगा दिया जाता है।"*[1]

गुरु द्वारा प्रस्तुत व्यंग्यात्मक रूपक, उस शैक्षिक प्रणाली की विकृतिपूर्ण सच्चाई को उजागर करता है जो आज भी कमोबेश किसी न किसी रूप में प्रायः सभी विद्यालयों में चलन में है। उपर्युक्त उद्धरण में 'कारखाना' और 'कल' शब्द का प्रयोग सुचिंतित रूप से किया गया है।

---

*प्रवाचक (हिंदी), क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर

[1]रवीन्द्रनाथ टैगोर 1964. *विश्व मानवता की ओर,* अनुवाद-इलाचंद जोशी, हिंदी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, पृ. 66

जहाँ कारखाने और कल हैं, वहाँ उत्पादन तो होगा ही और वह उत्पादन वस्तु के रूप में होगा। इस अर्थ में गुरुदेव के व्यंग्य का निहितार्थ है कि शिक्षा-व्यवस्था में, विद्यालयों में विद्यार्थियों को वस्तु की तरह एक उत्पाद के रूप में तैयार किया जा रहा है। यह ऐसा उत्पाद है जिसका शरीर गतिशील है लेकिन उसका 'अंतस' विद्यालय रूपी कारखाने में जड़प्राय हो गया है। विद्यालय वह स्थल है जहाँ बच्चों की सर्जनात्मक प्रतिभा (चाहे किसी भी क्षेत्र से संबंधित हो) का विकास किया जाना अपेक्षित है, लेकिन वह बच्चों की रचनात्मक क्षमता का विकास न कर, उन्हें कुंठित कर देता है। विद्यार्थी जो कुछ करता है, वह स्वेच्छा से न होकर आरोपित होता है। आज भी ऐसे विद्यालय मुश्किल से मिलेंगे जहाँ बच्चे सोत्साह जाते होंगे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर विद्यालयी शिक्षा की सार्थकता, उसके समाज सापेक्ष होने में मानते थे। इस तरह वे इस बात पर बल देते थे कि शिक्षा और जीवन में किसी प्रकार का पार्थक्य नहीं होना चाहिए। इस तरह वे समाज और जीवन से कटे विद्यालयों को बेजान मानकर निरर्थक समझते थे। उनका विचार है कि जहाँ विद्यालय अपने चारों ओर के समाज के साथ इस तरह घुल-मिल नहीं पाये हैं, जो बाहर से समाज के ऊपर बरबस लाद दिये गए हैं, वे शुष्क और निर्जीव होते हैं।[2] उन्होंने विद्या के दो विभाग माने हैं – एक विशुद्ध ज्ञान का, दूसरा व्यवहार का। वस्तुतः औपचारिक ढंग की शिक्षा, विशुद्ध ज्ञान से संबंधित है जबकि जीवन के साथ उसकी संबद्धता उसे व्यवहारिक बनाती है। गुरुदेव ने शिक्षा पर चिंतन करते हुए अनेक स्थलों पर सैद्धांतिक और व्यवहारिक शिक्षा में तालमेल की बात कही है और शिक्षा को व्यवहारिक जीवन से जुड़ा होना आवश्यक बताया है। विद्यालय और विद्यालयी शिक्षा को जीवन से जोड़कर देखने के पीछे उनकी सुचिंतित विचाराधारा थी जो मनुष्य को विश्व-जीवन और उससे आगे ले जाती है। उनके ही शब्दों में –

> *"वैयक्तिक जीवन से सामुदायिक जीवन में, सामुदायिक जीवन से विश्वजीवन में और विश्व-जीवन से अनंत की ओर बढ़ना ही आत्मा की स्वाभाविक प्रगति है।"*[3]

इस तरह उनके चिंतन में 'सा विद्या विमुक्ये' को अलग ढंग से समझाने की चेष्टा की गयी है। निश्चय ही आज की शिक्षा-प्रणाली में शिक्षा के इस व्यापक उद्देश्य को अनदेखा कर दिया गया है क्योंकि आज की शिक्षा-व्यवस्था विद्यार्थी को मुक्त करने के स्थान पर उसे अनेक प्रकार के बंधनों में कैद करती है। बंधनों में पड़कर मनुष्य, मनुष्यता के स्तर से काफी गिर जाता है।

---

[2]रवीन्द्रनाथ टैगोर 1964. *विश्व मानवता की ओर,* अनुवाद-इलाचंद जोशी, हिंदी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, पृ. 66

[3]उपरिवत्, पृ. 94

यह स्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि ऐसे विद्यालयों में इस बात को भुला दिया जाता है कि शिक्षा का उद्देश्य ही मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाना है।[4] इसके लिए उन्होंने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया कि विद्यार्थियों को मनुष्य के संपर्क में आना चाहिए क्योंकि इसी से उसका सच्चा मनुष्य जाग्रत होता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को काफी पहले अनुभव कर लिया था कि एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में बड़ा अंतर है।[5] इस तरह वे प्रकारांतर से ऐसी शिक्षा की आवश्यकता पर बल दे रहे थे जो विद्यार्थी को उसकी निजता में देखते हुए उसके समूचे व्यक्तित्व के विकास में योग दे सके। उन्होंने विद्यालयों में बच्चों को उपेक्षित स्थिति में देखकर काफी क्षोभ व्यक्त किया। बच्चों के प्रति व्यवस्था के उपेक्षापूर्ण रवैये को उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण कहानी 'तोते की पढ़ाई' में प्रतीक और व्यंग्य रूप में प्रस्तुत करने की सफल चेष्टा की है। तोते की पढ़ाई का प्रबंध राजा करता है और इसके लिए तमाम लोगों की व्यवस्था करता है, सारे संसाधन जुटाता है और तमाम तामझाम के बीच तोते को पिंजड़े में कैद करके रखा जाता है। सारे आयोजन उभरकर महत्वपूर्ण हो जाते हैं और वह तोता जिसे केंद्र में रखा जाना अपेक्षित था, घुटन के कारण विक्षिप्तता के कगार पर पहुँच गया और अंततः उसकी मृत्यु हो जाती है। कहानी के अंत में राजा के भतीजे, उन्हें बताते हैं कि पक्षी की शिक्षा पूरी हो गयी।

इस कहानी में कोरे पुस्तकीय ज्ञान की निर्थकता विद्यार्थी को शिक्षा देने के नाम पर ढेर सारे खर्चीले आडंबर और अंत में विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को कुंठित कर देने वाले माहौल पर कटाक्ष किया गया है। इस तरह पारंपरिक शिक्षा-प्रणाली की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न लगाया गया है। इस कहानी में प्रकारांतर से विद्यार्थी केंद्रित शिक्षा की अनदेखी करने के दुष्परिणामों की ओर संकेत किया गया है।

शिक्षा-प्रणाली में विद्यार्थी को केंद्र में रखने की आवश्यकता को रेखांकित करने के बावजूद रवीन्द्रनाथ ने गुरु की भूमिका और महत्ता पर विशेष बल दिया है। उल्लेख है कि इस संदर्भ में उन्होंने 'गुरु' को शिक्षक से अलग करके देखा है। उनके अनुसार,

> *"प्रारंभ में ही ज्ञान शिक्षा का आश्रम स्थापित करने के लिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है। शिक्षक तो पत्रों में विज्ञापन देते ही दौड़ पड़ते हैं, पर गुरु तो फरमाइश करते ही पाए नहीं जा सकते।"*[6]

गुरुदेव ने जो अंतर दर्शाया है, उसके पीछे दृष्टि संभवतः यह रही है कि शिक्षक केवल

[4]रवीन्द्रनाथ टैगोर 1964. *विश्व मानवता की ओर,* अनुवाद-इलाचंद जोशी, हिंदी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, पृ. 81

[5]उपरिवत्, पृ. 66

[6]विश्व-मानवता की ओर, पृ. 75

शिक्षा देता है जबकि गुरु छात्रों के अंतरमन को मथकर उसे उन्नत करता हुआ जीवन को सही ढंग से जीने का विवेकपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है। गुरुदेव के अनुसार शिक्षक कदाचित् शिक्षा देने के कार्य में उद्देश्य रखता है कि प्रतिदान (बदले में) उसे पैसा मिले, वह विद्यार्थी के घर से मिले या विद्यालय से वेतन के रूप में। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वार्थग्रस्त शिक्षकों पर कड़ी टिप्पणी करते हुए कहा है कि

> *"आज के शिक्षक दुकानदार हैं, विद्यादान उनका व्यवसाय हो गया है। इसलिए वे ख़रीददार की खोज में फिरते रहते हैं। व्यवसायियों से लोग चीजें ख़रीद सकते हैं, पर उनके यहाँ बिक्री की चीजों की सूची में स्नेह श्रद्धा, निष्ठा आदि हार्दिक गुण भी रहेंगे ऐसी आशा कोई नहीं कर सकता। इस आशा के अनुसार ही शिक्षक लोग वेतन लेते हैं और विद्या-वस्तु बेचते हैं– यहीं पर छात्रों के साथ उनका सारा संपर्क समाप्त हो जाता है। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में अनेक शिक्षक जो लेन-देन के संबंध से ऊपर उठ पाते हैं, वे केवल अपनी निजी विशेषता के फलस्वरूप।"*[7]

गुरुदेव के इन विचारों का निहितार्थ है कि आज की शिक्षा का जो संकट है, उसके तमाम कारणों में से एक कारण यह है कि समाज में गुरु का लोप हो गया है, और शिक्षक शेष रह गए। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षकों को गुरु के रूप में परिणित होना चाहिए। संभवत: इसी तथ्य को ध्यान में रखकर गुरुदेव ने कहा कि यदि हमें आदर्श विद्यालय की स्थापना करनी है तो जनसमाज से दूर निर्जन में, मुक्त आकाश तथा उदार तरु-लताओं के बीच उसकी व्यवस्था करनी होगी। वहाँ अध्यापकगण एकांत में अध्ययन तथा अध्यापन में व्यस्त रहेंगे और छात्रगण उस ज्ञान-चर्चा के यज्ञक्षेत्र के बीच अपना विकास करेंगे।[8]

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस परिकल्पना को सैद्धांतिक स्तर पर ही नहीं रखा, उसे कार्यरूप में परिणत करने का कार्य भी संभव कर दिखाया। उनके द्वारा स्थापित शांति निकेतन इस बात का जीवंत प्रमाण है। कथनी-करनी में अद्वैत की स्थिति शांति निकेतन में बखूबी देखी जा सकती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी गुरुदेव की, शिक्षक और गुरु के बारे में व्यक्त अवधारणा को इस रूप में उद्धृत किया है–

> *"आजकल जो लोग शिक्षा देते हैं वे शिक्षक हैं, लेकिन उन दिनों जो लोग शिक्षा देते थे वे गुरु होते थे। वे लोग शिक्षा के साथ एक ऐसी वस्तु देते थे जो गुरु और शिष्य के आध्यात्मिक संबंध से भिन्न किसी प्रकार का देना पावना नहीं हो सकती। विद्यार्थियों के साथ इस प्रकार के पारमार्थिक संबंध की स्थापना ही शांति निकेतन विद्यालय का मुख्य उद्देश्य है।"*

[7]विश्व-मानवता की ओर, पृ. 76
[8]उपरिवत्, पृ. 73

शांति निकेतन विद्यालय की स्थापना के कुछ दिनों के बाद उन्होंने अपने एक अध्यापक मित्र को लिखा। उपर्युक्त उद्धरण उसी का एक अंश है।[9] उन्होंने गुरु के व्यक्तित्व में मनुष्यत्व की अनिवार्यता पर बल दिया। मनुष्यत्व से दूर गए 'मास्टर साहब' को उन्होंने सबक रटाने का उस्ताद कहा है। इस तरह गुरुदेव ने गुरु के बारे में जो आदर्श कल्पना की, वह आज के शिक्षकों के सामने आदर्श कायम करती है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने मातृभाषा को बड़े सम्मान से देखा और कहा कि अपनी भाषा में शिक्षा पाना जन्मसिद्ध अधिकार है। मातृभाषा में शिक्षा दी जाए या नहीं इस तरह की कोई बहस होना ही बेकार है, उन्होंने कहा है कि अपनी मातृभाषा में शिक्षा पाने का जन्मसिद्ध अधिकार भी इस अभागे देश में तर्क और बहस–मुहाबिसे का विषय बना हुआ है।[10] उनकी मान्यता कि जिस तरह हमने माँ की गोद में जन्म लिया है, उसी तरह मातृभाषा की गोद में जन्म लिया है, ये दोनों माताएँ हमारे लिए सजीव और अपरिहार्य हैं।[11] रवीन्द्रनाथ ने मातृभाषा की महत्ता को समझा और उसे समझाने का प्रयास भी किया। वर्तमान में यह धारणा बलवती होती जा रही है कि विद्यार्थियों को मातृभाषा में शिक्षा देना मनोवैज्ञानिक और व्यवहारिक रूप से वांछनीय है क्योंकि विद्यालय आने पर बच्चे यदि अपनी भाषा को व्यवहृत होते देखते हैं, तो वे विद्यालय में आत्मीयता का अनुभव करने लगते हैं और यदि उन्हें सब कुछ उन्हीं की भाषा में पढ़ाया जाता है, तो उनके लिए सारी चीजों को समझना बेहद आसान हो जाता है। सर्वसाधारण की शिक्षा के विषय में विचार करते हुए गुरुदेव ने अपनी चिंता इन शब्दों में प्रकट की–

> *"मातृभाषा में यदि शिक्षा की धारा प्रशस्त न हो तो इस विद्याहीन देश में मरुवासी मन का क्या होगा।"* [12]

इस कथन से जाहिर होता है कि उनके मन में यह विचार था कि इस देश में लोगों को शिक्षित करना अपेक्षित है और मातृभाषा के माध्यम से ही शिक्षा प्रदान करना ही सबसे प्रभावी क़दम है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी 'निज भाषा' कहकर प्रकारांतर से मातृभाषा के महत्व को अपने निम्नलिखित बहुचर्चित दोहे में निर्दिष्ट किया है–

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञाने के, मिटै न हिय को सूल।।[13]

वस्तुतः प्रत्येक चिंतक, रचनाकार मातृभाषा को महत्व देते हुए अपने–अपने ढंग से, उसके

---

[9]मुकुंद द्विवेदी 1998. संपादक, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग 8, मृत्युंजय रवीन्द्र, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, (गुरुदेव का शांति निकेतन), पृ. 415

[10]उपरिवत्, पृ. 419

[11]विश्वनाथ नरवड़े 1991. रवीन्द्रनाथ के निबंध (भाग 1), साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, पृ. 309

[12]अमृत राय 1990. रवीन्द्रनाथ के निबंध (भाग 2), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृ. 339

[13]हेमंत शर्मा 1998. *भारतेंदु समग्र,* हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, पृ. 228

बारे में अपने मंतव्य प्रकट करता है। गुरुदेव रवीन्द्र ने जिस बात को अपने निबंध में अच्छी तरह से समझाया है, उसी बात को भारतेंदु ने कविता के माध्यम से लोगों को अवगत कराने की सफल चेष्टा की है। इस संदर्भ में रवीन्द्रनाथ ने जापान का दृष्टांत रखा है कि इस देश में जितनी उन्नति हुई है, वह वहाँ की अपनी भाषा जापानी के ही कारण है। जापान ने अपनी भाषा की क्षमता पर भरोसा किया और अँग्रेज़ी के प्रभुत्व से जापानी भाषा को बचाकर रखा।

गुरुदेव ने चिंतन–प्रक्रिया से गुज़रते हुए जनसामान्य के लिए इस महत्वपूर्ण विचार को प्रस्तुत किया कि अनावश्यक को जिस परिमाण में हम अत्यावश्यक बना डालेंगे उसी परिमाण में हमारी शक्ति का अपव्यय होता चला जाएगा। धनी यूरोप के समान हमारे पास संबल नहीं है। यूरोपवालों के लिए जो सहज है हमारे लिए वही भारस्वरूप हो जाता है। सुगमता, सरलता और सहजता ही वास्तविक सभ्यता है। अत्यधिक आयोजन की जटिलता एक प्रकार की बर्बरता है। ध्यातव्य है कि गुरुदेव ने उपर्युक्त विचार शिक्षा की समस्या पर विचार करते हुए प्रकट किए थे। इस तरह उनका मंतव्य स्पष्ट था कि शिक्षित होने के क्रम में अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि हमें अपने परिवेश के अनुरूप आचरण करना चाहिए और फिजूलखर्ची और आडंबर के प्रदर्शन से बचना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से हम अपनी अर्थ–व्यवस्था के दायरे में रहेंगे और दिखावा न करके हम प्रकारांतर से उन लोगों के अपमान करने के पाप से भी बच जाएंगे जो अर्थाभाव में दो जून की रोटी भी नहीं खा पा रहे हैं।

यों तो गुरुदेव ने अपने लेखन में शिक्षा से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है परंतु यहाँ उनमें से कुछ का उल्लेख इस आशय से किया गया है कि इस बात का अनुभव किया जा सके कि उन्होंने शिक्षा पर जो चिंतन किया है, उनके समय के समाज से संबद्ध होने के साथ–साथ आज के समय की शैक्षिक समस्याओं का परिचय कराता है और उनके समाधान के सुझाव प्रस्तुत करता है। इस रूप में उनके विचारों की सार्थकता तथा प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। यदि हम लोग गुरुदेव के शैक्षिक विचारों से जुड़े बिंदुओं को ध्यान में रखें और उनके अनुरूप कार्य करें, तो वर्तमान समय की बहुत–सी समस्याओं से छुटकारा मिल सकता है जिसका दूरगामी सकारात्मक परिणाम सामने आएगा।